श्रीहरि

मानस की दिव्यता

आइये रामचरित मानस की स्वयम्भूत दिव्यता को समझें। मानस आज अपने चमत्कारिक प्रभाव के कारण ही विश्व की सर्वाधिक बिकने वाली धार्मिक पुस्तक है। अरबों की संख्या में इसकी प्रतियाँ बिक चुकी हैं। इसका सुन्दरकाण्ड तो इससे भी कई गुणा ज्यादा बिकता है। अब तो यह ऑडियो बीडियो सीडियो के रूप में भी खूब गूंज रहा है। इसकी दिग्दिगन्त में कीर्ति छाई हुई है तो इसके पीछे ठोस कारण है। निःसन्तान को या कन्याओं के पिता को पुत्र चाहिये तो उसे गुणीजनों का सुझाव होता है कि वो **''एक बार भूपति मन माहीं, भै गलानि मोरें सुत नाहीं''**। १/१८८/१ का सम्पुट लगाकर इसका पाठ करें। यदि किसी को सुयोग्य जीवन साथी या सुन्दर पति चाहिये तो गुरुजन उसे **''देबि पूजि पद कमल तुम्हारे, सुर नर मुनि सब होहिं सुखारे''**।१/२३५/२ के सम्पुट की सम्मति देते हैं। इसी प्रकार किसी को निजी मकान चाहिये तो **''सुंदर सदनु सुखद सब काला, तहाँ बासु लै दीन्ह भुआला''**। १/१२६/७ का सम्पुट, किसी को उच्च शिक्षा चाहिये तो **''गुरु गृहँ गए पढ़न रघुराई, अलप काल विद्या सब आई''**। १/२०३/४ का सम्पुट, किसी को विदेश जाना है, वीजा पासपोर्ट चाहिये तो **''जिमि अमोघ रघुपति कर बाना, एही भाँति चलेउ हनुमाना''** ५/०/८ का सम्पुट। हैदराबाद का चिलकुट बालाजी का मन्दिर तो **'विसा हनुमानजी'** के नाम से ही प्रख्यात है, केवल विदेश यात्रा ही नहीं अपितु सकल कामनाएँ ही सिद्ध होती हैं जिसका प्रमाण वहाँ लगाई जाने वाली परिक्रमाओं से मिल जायेगा खैर, किसी का समय कठिनाइयों भरा है तो **''दैहिक दैविक भौतिक तापा, राम राज नहिं काहुहि ब्यापा''**। ७/२०/१ और यदि कोई असाध्य रोग से ग्रस्त है तो **''दीन दयाल बिरिदु संभारी, हरहु नाथ मम संकट भारी''** ५/२६/४ का सम्पुट लगाकर कष्टों से निवारण भी पा जाते हैं।

वस्तुतः मानव जीवन में हमें जिन विषम परिस्थितियों से रूबरू होना पड़ता है, वे सब मानस में प्रसंगों के रूप में मौजूद हैं। उनसे कैसे निपटा गया यही मानस के पाठ से शिक्षा मिलती है। और वहाँ प्रयुक्त दोहे चौपाई ही सम्पुट के रूप में महामंत्र का कार्य करते हैं क्योंकि सम्पूर्ण मानस शाबर मंत्रों से अभिमन्त्रित की हुई है। गोस्वामीजी का स्पष्ट आश्वासन है–**''उपबीत ब्याह उछाह मंगल सुनि जे सादर गावहीं।**

बैदेहि राम प्रसाद ते जन सर्बदा सुखु पावहीं''।१/१६१

मानस के तीनों आचार्यों ने भी सर्व सम्मति से सकाम भक्तों की कामना पूर्ति का आश्वासन दिया है **''जे सकाम नर सुनहिं जे गावहिं, सुख संपति नाना बिधि पावहिं।**७/१४/३ और श्रद्धा विश्वास रखने वालों की कामना पूर्ति भी अवश्य होती है। इसका पता भी धन्यवाद ज्ञापन हेतु आयोजित अखण्ड रामायण के गूँजते सम्पुटों के स्वरों से लग जाता है। यदि जीवन धन्य हो गया, सभी मनोकामनाएँ पूरी हो गईं तो **''प्रभु की कृपा भयउ सबु काजू, जन्म हमार सुफल भा आजू''**।५/२६/४ सुनाई पड़ता है, सन्तान प्राप्ति हुई तो **''मंगल भवन अमंगल हारी, द्रवउ सो दसरथ अजिर बिहारी''**।१/१११/४ और मकान बन गया तो कर्ण पुटों में **''प्रभुता तजि प्रभु कीन्ह सनेहू, भयउ पुनीत आजु यहु गेहू''**२/८/७ का सम्पुट झंकरित हो उठता है।

चमत्कृत करने वाली इस दिव्यता के पीछे एक कारण तो है मानस की पाणिनि व्याकरण के सिद्धान्तों पर की गई रचना से उच्चारण में मिलने वाला प्रत्यक्ष लाभ, दूजे में, इसे भगवान उमा महेश्वर से मिला हुआ यह शुभाशीर्वाद भी है–

सपनेहु साँचेहु मोहि पर जौं हर गौरि पसाउ।

तौ फुर होउ जो कहेउँ सब भाषा भनिति प्रभाउ।।१/१५

झाड़-फूँक करने वालों के सद्यफलदायी **साबर मंत्र** भी भगवान उमा महेश्वर के ही रचे हुये हैं **''कलि बिलोकि जग हित हर गिरिजा, साबर मंत्र जाल जिन्ह सिरिजा। अनमिल आखर अरथ न जापू, प्रगट प्रभाउ महेस प्रतापू''**।१/१४/६ और विश्व की अद्वितीय, अलौकिक पाणिनि व्याकरण का सूत्रजाल भी इन्हीं शूलपाणि का रचा हुआ है–

''नृत्तावसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नव पंचवारम्।

अद्धर्तुकामः सनकादि सिद्धानेतद्विमर्शे शिवसूत्र जालम्।।

इसी में गोस्वामीजी के गुरु नरहर्यानंदजी ने उन्हें पारंगत बनाया है, मूल गोसाईं चरित में इसका स्पष्ट उल्लेख है–

''निज सिष्यहि विद्या पढ़ाय रहे, अरो 'पानिनि सूत्र' घोखाय रहे''।

लघु बालक धारनसत्ति जगी, अनुरक्ति सभक्ति दिखान लगी'' पाणिनि सद्य फलदायी ध्वनि विज्ञान है। मानस में संजोये हुये शब्द/पद ही उच्चारण कर्ता के उत्तमांगों को रस प्रदान करते हैं। आइये इसे समझें। प्राचीन ध्वनि वैज्ञानिकों ने इस शिवसूत्र रूपी पाणिनि व्याकरण की सम्पूर्ण वर्ण राशि को मुख्यतः दो भागों में विभाजित किया है (१) स्वर तथा (२) व्यंजन। लौकिक शिक्षा में स्वर से तात्पर्य **''अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॡ ए ऐ ओ औ''** से है तो **अं** अनुस्वार और **अः** विसर्ग श्रेणी में रखे गये हैं। इनके उच्चारण में मुख विवर में वायु का अवरोध नाम मात्र का होता है (अतः स्वरों को निरपेक्ष या स्वतः निष्पादित होने वाले वर्ण कहा गया है) जबकि व्यंजन वर्णों के उच्चारण में मुख विवर के कतिपय अंगों यथा कण्ठ, तालु, मूर्धा, दन्तः, ओष्ठ, नासिका आदि उत्तमांगों पर सुनिश्चित प्रभाव पड़ता है। **क**कार से **म**कार तक के पच्चीस वर्णों को तो स्पर्शा ही कहा गया है, **'य र ल व'** इन चार को अन्तस्थ से निकलने वाले और **श ष स** तथा **ह** इन चार को उष्म वर्ण कहा गया है–

''ककारादि मकारपर्यन्ताः स्पर्शाः पंचविंशतिः।
चतस्रो यादयोऽन्तस्था, उष्माणः शषसाः सहाः''।व.र.प्र.शिक्षा१३ वर्णों के इन दिव्य गुणों के कारण ही वेद वेदागों में इन्हें ब्रह्म का स्वरूप माना है **''एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम्''**।कठो० १/२/१६ श्रीगीताजी के विभूति योग में भगवान श्रीकृष्ण ने भी स्वयं को अक्षरों में अकार कहा है **''अक्षराणामकारोऽस्मि''**१०/३३ और इसके पहले **''गिरामस्म्येकमक्षरम्''** १०/२५ भी कह चुके हैं। श्रीगीताजी की इसी शैली पर ही गोस्वामीजी ने भी मानस के प्रथम श्लोक में प्रथम वंदना वर्णाक्षरों की और उसके अर्थसमूह से रस प्रदान करने वाले छंद याने वेद (=यूजूँषि सामानि छन्दाँसिं, बृहद्०१/२/५) पुराणादि की और तब सभी मंगलों के कर्त्ता की की है जो वाग्देवी सरस्वती व गणपति के भी कर्तार हैं–

''वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि।
मंगलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ''।।१मं.१

ऊपर कठोपनिषद का उद्धरण दिया है, वहाँ स्पष्ट कहा है कि जो इस अक्षर के मर्म को जान लेता है वह इच्छानुसार फल प्राप्त कर लेता है **''एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत''**।कठ.१/२/१६ अक्षरों का मर्म जानना यह ध्वनि विज्ञान और शिक्षा ग्रन्थों का विषय है। गोस्वामीजी ध्वनि विज्ञान के पारंगत पण्डित रहे हैं विशेषकर सामवेदीय शिक्षा के। इसीलिये मानस इतना सुर–ताल–लयबद्ध है और सद्यफलदायी भी। इसका इतना प्रचार–प्रसार भी इसीलिये है। इसे सद्यफलदायी बनाने के लिये गोस्वामीजी ने इसके वर्णों में किंचित सा हेर–फेर किया है और इस हेर फेर को अपनी भणिति माना है **''भनिति मोरि सब गुन रहित बिस्व बिदित गुन एक''**।१/९ इन्हीं परिवर्तित वर्णों के द्वारा, उन्होंने पाठ कर्त्ता को हीन उच्चारणों के दुष्प्रभाव से बचाने का, उसके स्वर यन्त्र को आद्र रखने का, पीयूष ग्रन्थि से रस स्राव करा कर हृदय को पुष्ट व शरीर के उत्तमांगों को स्वस्थ रखने का, ऐसे और भी न जाने कितने ही कार्य लिये हैं। ध्यान रहे हम भोजन चबाने का ही कार्य करते हैं, उसे पचाने का कार्य वैश्वानर के रूप में स्वयं ईश्वर करता है–

''अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः।
प्राणापान समायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम्''।।१५/१४श्रीगीताजी।

विधाता ने काटने चबाने के दाँत मुँह में ही अलग अलग बनायें हैं वैसे ही मुख में स्राव ग्रन्थि से अलग अलग प्रकार का रस स्राव होता है। सर्प को विष की और गाय को दूध की उपलब्धि इन्हीं स्रावों से होती है। वर्णों के उच्चारण से भी तुष्टि पुष्टि वाले मनोवांच्छित रस प्राप्त किये जा सकते हैं। हमारे शिक्षाशास्त्रों के अनुसार कतिपय वर्णों के उच्चारण से मानव को दीर्घायु और ज्ञान की प्राप्ति होती है। मानस की भी प्रसिद्धि उक्ति है **''उलटा नाम जपत जगु**

जाना, बालमीकि भए ब्रह्म समाना''।
२/१६३/८ डाकू रत्नाकर पर चीटियों ने वल्मीकि चढ़ा दी, इसमें बरसों समय लगा होगा, इस अवधि में उन्हें ऊर्जा राम राम के उच्चारण से ही तो मिली। उनके उत्तमांगों का पोषण और त्रिकाल ज्ञान की उपलब्धि भी इसी प्रक्रिया से हुई इसीलिये उन्हें **'भए ब्रह्म समाना'** कहा है। श्रीसीताजी ने भी लंका में ग्यारह महीने भोजन ग्रहण नहीं किया। उनके संदर्भ से ही श्रीहनुमानजी महाराज के मुखारविन्द से संदेश है कि पातंजलि योग के ध्यान, धारणा, प्रत्याहार, प्राणायम् और समाधि का अनुपालन करते हुये सतत राम नाम जपा जाये तो प्राण भी नहीं निकल सकते- **''नाम पाहरू दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट।**

लोचन निज पद जंत्रित जाहिं प्रान केहिं बाट''।।५/३०

इस कलिकाल में भी कबीरजी, तुलसीजी व स्वामी रामसुखदासजी भी शतायु से भी अधिक जिये हैं तो राम नाम के प्रभाव से ही। किन्तु कुछेक वर्णों से दुष्प्रभाव की भी संभावना रहती है।

इसीलिये मानस के मंगलाचरण के तेइस श्लोक व संस्कृतनिष्ट स्तुतियों को अपवाद स्वरूप मान लें तो हमें गोस्वामीजी के किसी भी ग्रन्थ में तालव्य **'श'** और **'ऋ,ण,क्ष,ज्ञ'** आदि वर्ण यथा रूप में नहीं मिलेंगे। बल्कि इनके स्थान पर वहाँ तद्रूप वर्ण जैसे दन्तव्य **'स, रि, न, छ, ग्य'** आदि प्रयुक्त हुये हैं। **'क्ष'** वर्ण के स्थान पर **'च्छ, क्ख, ष'** आदि भी मिल सकते हैं। साथ ही शब्द के प्रथम अक्षर में जहाँ भी **'व'** वर्ण प्रयुक्त होना चाहिये वहाँ आपने **'ब'** वर्ण का उपयोग किया है यथा **'बचन, बाणी, बिचार, बिभीषन, बैदेही, बाल्मीकि'** आदि। स्वयं विचार करें कि मानस का प्रारम्भ गोस्वामीजी ने **'व'** वर्ण से यथा
'वर्णानामर्थसंधाना' और समापन भी **व** अक्षर **'दह्यन्ति नो मानवाः'** से किया है। यों भी यह **'व'** वर्ण पाणिनि के अनुसार **'अन्तसाः'** है अन्तसः से निकलने वाला अमृत है और तन्त्रशास्त्रानुसार भी **'व'** अमृतबीज है तब **'व'** के स्थान पर **'ब'** वर्ण क्यों प्रयोग किया गया? मानस में इस **'ब'** वर्ण से बने शब्दों का अत्यधिक प्रयोग देखकर मन भी सोचने के लिये विवश हो जायेगा कि गोस्वामीजी ने किसी उद्देश्य विशेष के लिये ही इन ब वर्णों को संजोया है।

'ब' वर्ण और इन पाँच वर्णों में किये परिवर्तन का रहस्य यदि हमारे समझ में आजाये तो मानस के सद्यफलदायी होने का कुछ राज भी खुल जायेगा और मन भी अभिभूत हुये बिना नहीं रहेगा कि गोस्वामीजी ने हमें अपने काव्य की कीमत पर इन्हें उपलब्ध कराया है। पुराण पण्डित तालव्य **'श'** को उच्छिष्ट वर्ण मानते हैं, कारण कि इसके उच्चारण में कण्ठगत् वायु कण्ठ में ही घुटती है, जिह्वा उसे तालु के भीतर धकेलती है। जबकि दन्तव्य **'स'** के उच्चारण में वायु सीटी के समान मुँह से बाहर निकल जाती है। साथ ही नासाग्रों से फेफड़ों को शुद्ध वायु मिल जाती है। दोनों वर्णों का उच्चारण कर आप स्वयं अनुभव कर लें। वैखरी सुजानों का कहना है कि **'श'** तथा **'स'** के स्वलपान्तर से ही अर्थ का अनर्थ भी हो जाता है जैसेकि **'स्वजन'**=कुटुम्बी को कहते हैं तो **'श्वजन'**=कुत्ते हो जाता है, **'सकल'**=सम्पूर्ण है तो **शकल**=खण्ड को कहते हैं, **'सकृत'**= एक विशिष्ट है तो **'शकृत'**= विष्ठा को कहते हैं। इसीलिये शास्त्रों में मन्त्रों के उच्चारण में विशेष सावधानी बरतने का निर्देश है। पाणिनीय शिक्षा में स्पष्ट कहा गया है कि **'स्वर'** या **'वर्ण'** से हीन मन्त्रों का मिथ्या प्रयोग होने पर वे यजमान को अभीष्ट फल नहीं देते अपितु वे वाणी रूपी वज्र बनकर उसका ही नाश कर देते हैं जैसे इन्द्र शत्रु (वृत्रासुर) स्वर के अशुद्ध उच्चारण के कारण मारा गया-

''मन्त्रो हीन स्वर तो वर्णतो वा, मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थ माह।
स वाग्वज्रो यज्ञमान हिनस्ति, यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात। पा.शि-५२

'श' वर्ण के समान ही **'ऋ,ण,क्ष,ज्ञ'** वर्णों के उच्चारण में भी जिह्वा मुंह में पलटकर वायु को अवरोधित करती है और **'ज्ञ'** वर्ण को तो कई लोग **'ज्य'** उच्चारित करते हैं जोकि गोस्वामीजी को अभीष्ट नहीं है। इसीलिये इन वर्णों को उन्होंने अपनी भणिति में प्रयोग नहीं किया। किन्तु मंगलाचरणों व संस्कृत निष्ट तीन स्तुतियों में वैदिक परम्परा का पूरा पालन किया है। **'व'** वर्ण भले ही दंत ओष्ठव्य कहलाता हो

परन्तु उच्चारण में इन्हें स्पर्श नहीं करता है, मुख खुला ही रहता है। जबकि **'ब'** वर्ण न केवल ओष्ठ को स्पर्श करता है बल्कि जिह्वा भी लार ग्रन्थी को स्पर्श कर स्राव कराती है। इसीलिये भगवान शिव के कांवड़िये और सालासर बालाजी के श्रद्धालु **जै बाबे की–जै बाबे की** और माँ भगवती के भक्त **जै माता दी–जै माता दी,** का उद्घोष करते हुये सैकड़ों किलोमीटर की यात्रा निर्विघ्न पूरी कर लेते हैं। आप भी मानस की चौपाइयाँ, विशेषकर **'ब'** और **'त'** वर्ण वाली को दोहराते चलेंगे तो भीषण गर्मी में होठ तर रहेंगे, तृषा नहीं लगेगी, जल की आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी। **'त थ द ध न'** आदि दंतव्य वर्णों से बने पद यथा **ताता माता सीता जननी धरनी** आदि तो मानों मुँह में मिश्र घुला दूध ही दे देते हैं। उच्चारण कर स्वयं देख लें। भुक्तभोगी श्रद्धालुओं से भी इसकी पुष्टि हुई है। और इन प्रयोगों को मैनें स्वयं और अपने संगी साथियों के द्वारा भी आजमा कर देखा है। परन्तु सद्य लाभ तभी होगा जब पाठ शुद्ध एवं सुस्थिरचित्त से किया जाय। आजकल **''जो सत बार पाठ कर कोई, छूटहि बंदि महा सुख होई''** के फेर में हनुमान चालीसा के द्रुतगति तीन मिनट से भी कम समय में पाठ सम्पन्न किये जा रहे हैं। हनुमानजी महाराज आर्त की गुहार भले ही सुन लें अन्यथा ऐसे उतावले Superfast पाठ करना तो सभी ग्रन्थों में वर्जित है–

''उच्चैः पाठं निषिद्धं स्यात्त्वरां च परिवर्जयेत्
शुद्धेनाचलचितेन पठितव्यं प्रयत्नतः''।

श्रीदुर्गासप्तशती

हम सनातन धर्मियों के कर्मकाण्ड का, यज्ञ हवनादि अनुष्ठान का बीज मंत्र **'रं'** है, न कि प्रणव अक्षर। ओंकार तो निराकार ब्रह्म का और सृष्टि की व्यापकता का प्रतीक है। इसीलिये मानस में ओम (एक वैदिक स्तुति **''निराकारमोंकारमूलं तुरीयं''**७/१०७ के अलावा) कहीं नहीं मिलेगा। व्याकरण में **'राम'** की व्युत्पत्ति रमु क्रीड़ायाम् धातु से हुई है। उपनिषदों के अनुसार **'राम'** का अर्थ है जो सबको रमण कराये, जिसमें योगी महात्मा रमण करें उसे सत्–चित्–आनन्द स्वरूप परंब्रह्म को राम कहते हैं। देवनागरी लिपि के **र** कार, **म** कार वर्ण भी इसी प्रकार दिव्य **''रमु क्रीड़ा रामनाम्नैव''** का सही दिग्दर्शन कराने वाले हैं। तात्पर्य है कि ब्रह्म के समान ये दोनों वर्ण निबन्ध में मध्य (र) ऊपर (ं) नीचे (◌ा) और पाताल में भी (कृ) सुशोभित मिलेंगे। इसी का संकेत गोस्वामीजी ने राम नाम वंदना में किया है–

''एकु छत्रु एकु मुकटमनि सब बरननि पर जोउ ।
तुलसी रघुबर नाम के बरन बिराजत दोउ''।।१/२०

इनकी दिव्यता का उल्लेख भी किया है कि ''ब्रह्माण्ड में जो सूर्य और चन्द्रमा में अग्नि (ऊर्जा) प्रकाश और अमृत तत्व है वह परात्पर रामजी से ही है और पिण्ड को ये तीनों तत्व राम नाम के **र** कार, **अ** कार, **म** कार के उच्चारण से मिल जाते हैं **''बंदउँ नाम राम रघुबर को, हेतु कृसानु भानु हिमकर को''।**१/१८/१ इसीलिये हरदम श्रीमन्नारायण नारायण का संकीर्तन करने वाले श्रीनारदजी ने राम नाम मंत्र को ही सर्वोच्च ठहराया है **''राम सकल नामन्ह ते अधिका, होहु नाथ अघ खग गन बधिका''**। ३/४१/८ इसीलिये शास्त्र संत और संहिताओं का कहना है कि ये दिव्य **र** कार (**म** कार भी) वेदों की ऋचाओं में उसी प्रकार व्यवस्थित है जैसेकि छोटे से बीच में विशाल वृक्ष के शाखा पत्ते फूल सभी होते हैं–

''बीजे यथा स्थितो वृक्ष शाखा पल्लव संयुतः।
तथैव सर्व वेदाश्च् र कारेषु व्यवस्थिताः''।पुलह संहिता

वैदिक मंत्रों की यही ऊर्जा हमें भी उपलब्ध कराने के लिये गोस्वामीजी ने ऊर्जा के इन स्रोतों **र** कार, **म** कारों को मानस की सभी चौपाइयों, दोहों, छन्दों, सोरठों में संजोया है (केवल छः चौपाइयाँ जैसेकि **''झूठइ लेना झूठइ देना, झूठइ भोजन झूठ चबैना''**७/३८/७ अपवाद हैं)।

आज वेद वेदांत पीछे छूठ गये हैं, दिग्दिगन्त में गूंज है तो मानस की। हम तो हम आज यह मानस अन्य धर्मावलम्बियों के मुख से भी मुखरित हो रहा है क्योंकि सरस वाणी में गुंफित वैदिक ज्ञान ही इसकी अलौकिक शक्ति है। यही ज्ञान उन्हें आकर्षित करता और तालबद्ध सामवेदी रचना गायन के लिये प्रेरित

कर उन्हें प्रत्यक्ष ऊर्जा भी प्रदान करा देती है।

मानस में ऐसे और भी अनेक ज्ञात-अज्ञात प्रयोग हुये हैं। वस्तुतः हमें जो वर्ण और भाषा के दोष लगते हैं वे ही मानस के दिव्य गुण हैं, यही इसकी खूबियाँ हैं। गोस्वामीजी ने इसका संकेत भी किया है **''भाव भेद रस भेद अपारा, कबित दोष गुन बिबिध प्रकारा''**।१/८/१० आगे भी कहा है **''धुनि अबरेब कबित गुन जाती, मीन मनोहर ते बहुभाँती''**।१/३६/८ करुण रस में वीर रस, विभत्स में शान्त रस स्त्रीलिंग में पुल्लिंग आदि के प्रयोग **भाव भेद रस भेद अपारा** के अन्तर्गत ही किये गये हैं। किन्तु गोस्वामीजी के निर्वाण (सं०१६८०) के बाद पीछे से लोगों ने पाठ को अनेक प्रकार से तोड़ा मरोड़ा है, कई पद बदल दिये, अनेक अनुस्वार हटा दिये, प्रायोजित **स** कारों को **श** कार कर डाला। इनका जायजा अंजनाशरणजी कृत **मानस पीयूष,** जोकि मानस की Encylopedia भी कहलाती है, में लिया जा सकता है। वहाँ अपनी टिप्पणियों के साथ उन्हें उद्घृत किया है। इनमें बीसवीं सदी के पं० श्रीरामेश्वरलाली और पं० श्रीज्वालाप्रसादजी भी हैं। इन लोगों की नेक नियत पर शंका नहीं की जा सकती। आप सज्जनों ने यह समझकर गोसाईंजी की भणिति को संस्कृत का शुद्ध रूप दे दिया कि गोसाईंजी को लोग संस्कृत से अनभिज्ञ न समझें। जहाँ कथा की अपूर्णता मालूम हुई वहाँ क्षेपक भी जोड़ दिये, इसमें आठवाँ लवकुश काण्ड भी जङ दिया। किन्तु इन गुणज्ञों ने वहीं पर अपने सृजन को क्षेपक सूचित करने की भी कृपा की है। परन्तु ये क्षेपक ही, सम्पुट लगाकर अनुष्ठान करने वालों के लिये, बाधक हो जाते हैं। और फिर श्रद्धालुओं के पास जो सर्वाधिक प्रतियाँ पाई जाती हैं, वे प्रायः गीताप्रेस की या उसके तर्ज पर ही बनी हुई हैं क्योंकि ये ही अरबों की संख्या में बिकी हैं। और ये सभी गोस्वामीजी के समय की, संवत १६६१ में उनके हाथ की लिखी वा सर्वाधिक प्रमाणित प्रति के आधार पर ही प्रस्तुत की गई हैं। सामूहिक अनुष्ठानों में इनका और क्षेपकों वाली परिमार्जित प्रतियों का तालमेल ही नहीं बैठ पाता, लय-ताल ही भंग हो जाय तब इनसे मंत्रवत् लाभ की आशा कैसे की जाये?

इस इक्कीसवीं सदी में भी अपने को धीमताम वरिष्ठम् मानने वाले एक गुरुजन ने अपने ज्ञानान्ध में मानस की ऐसी दुर्दशा की है कि आज का मानस प्रेमी क्षुब्ध है तो कल का इतिहास भी उन्हें क्षमा नहीं करेगा। गुरुजनों से क्षमा मांगते हुये मुझे मजबूरन इस विषय पर चर्चा करनी पड़ रही है क्योंकि उनके किये परिवर्तनों से मानस की चमत्कृत करने वाली दिव्यता ही नष्ट हो जायेगी। आपने शिव शम्भू शंकर शुभ आदि के शकार को सुधारने के साथ उकार और अनुस्वार का भी उद्धार कर डाला, मनमाने भाव गढ़ कर चौपाइयाँ भी बदल डाली। **''भाव भेद रस भेद अपारा''** को इंगित करने वाली मानस की यह **''मरम बचन जब सीता बोला, हरि प्रेरित लछिमन मन डोला''** ३/२७/५ सुप्रसिद्ध चौपाई है। ये प्राचीन और अर्वाचीन सभी प्रतियों में, और तो और क्षेपकों वाली श्रीज्वालाप्रसादजी की टीका में भी ज्यों की त्यों धरी हैं। किन्तु उपरोक्त महानुभाव ने व्याकरण शुद्धि के प्रयास में इसे **''मरम बचन जब सीता बोली, हरि प्रेरित लछिमन मति डोली''** करके इसमें निहित गूढ़ भाव का ही गला घोंट दिया। परम पूज्य पं० रामकिंकरजी उपाध्याय को मानस प्रबुद्ध जनों ने भी युग तुलसी माना है। वे मानस के गूढ़ गंभीर चिंतकों में माने गये हैं। मुझे स्मरण आ रहा है कि कानपुर शिवाला के प्रवचनों में पण्डितजी ने इस पँक्ति के सन्दर्भ में कहा था कि गोस्वामीजी ने एक छोटा सा **'बोला'** पुल्लिंग पद देकर ही श्रीसीताजी के पूरे पक्ष को उजागर कर दिया। वे जनकदुलारी हैं, मर्म वचन बोलना उनके संस्कारों में ही नहीं है। यहाँ गोस्वामीजी ने हरि प्रेरित से संकेत किया है तो आगे विदेह नन्दिनी के मुख से कहलाया है **''जेहि बिधि मोहि दुख दुसह सहाए, लछिमन कहुँ कटु बचन कहाए''।** ६/६८/८ जब कहलाने वाला विधाता या हरि है तो **'बोला'** ही कहा जायेगा।

मानस का उद्देश्य केवल हरि भक्ति ही परोसना नहीं है, समाज को सुसंस्कारित भी करना है। देवर को मर्म वचन कहना, प्रत्युत्तर में लक्ष्मणजी के कहे कटु वचनों का वर्णन करना, इससे तो गलत परम्पराओं को ही

बढ़ावा मिलेगा। वाल्मीकि के सर्ग ४५ में इन संवादों का विस्तार से वर्णन है। आश्चर्य होता है कि विदेह जैसे ब्रह्मज्ञानी की पुत्री सीता और पुरुषोत्तम माने गये राम के अनुज लक्ष्मणजी जैसे सुसंस्कारियों में ऐसे संवाद होना क्या संभव भी है? गोस्वामीजी की दृष्टि में ये क्षेपक हैं। वस्तुतः वे जब देशाटन करके काशीजी पहुँचे तो वहाँ समय का सदुपयोग करने के लिये वाल्मीकि रामायण की प्रति उतारने लगे (जोकि सरस्वती भवन काशी में आज भी सुरक्षित है) तब उन्हें इन क्षेपकों का ज्ञान हुआ।

संलग्न अंतिम पृष्ठ के फोटो से ही मिलान करने पर क्षेपकों की प्रतीति हो जायेगी। प्रचलित **'रामायण'** में भाव व श्लोक दोनों दोहराये हुये मिलेंगे। अतएव उन्होंने संस्कृत में अध्यात्म रामायण की रचना की एवं भाषा में रामचरित मानस रचा। इसमें क्षेपकों का स्पष्ट संकेत किया है–

बंदउँ मुनि पद कंजु रामायन जेहिं निरमयउ।

सखर सुकोमल मंजु दोष रहित दूषन सहित।।१/१४(घ)

सामवेदीय शिक्षा वाङ्मय के आधार पर मानस को रच कर गोस्वामीजी ने इसे मंत्रवत् सद्यफलदायी बनाया है। इसीलिये साढ़े चार सौ वर्षों से इसकी दिग्दिगन्त में गूँज है, आज यह भारतीय भाषाओं में या अंग्रेजी में ही नहीं बल्कि रशियन, जर्मन जैसी लिपियों में भी उपलब्ध है। ऐसे सफल ग्रंथ को भी उपरोक्त गुरुजन ने अपने इसी प्रकार के संशोधनों से निर्वीर्य करने की चेष्टा की है। आपको मानस की प्रचलित प्रतियों के अनुनासिक और उकार भी भयंकर आडम्बर लगे। अतः जहाँ तक उनसे संभव हुआ सबकी विदाई करदी।

अनुस्वार, चन्द्रबिन्दु (ँ) गं ह्वां आदि अनुनासिक स्वर हैं। इनकी वैदिक शिक्षा ग्रन्थों में बहुत विस्तार से चर्चा है। वस्तुतः इस छोटे से स्वर की एक मात्रा हृदय में उच्चारित होती है आधी मात्रा मूर्धा (शिर) में और अवशिष्ट आधी मात्रा नाक में बोली जाती है। तात्पर्य है कि इन सब अंगों को सक्रिय करती है–

''हृदये चैकमात्रस्तु, अर्द्धमात्रस्तु मूर्द्धनि।
नासिकायां तथार्द्धं च, रंगस्यैवं द्विमात्रता''।।२८पाणिनीय शिक्षा

ध्यान देंगे तो इस छोटे से बिन्दु में गागर में सागर समाया हुआ है। इस एक ँ में ही स्पर्शा, अन्तःस्था, उष्माणः और नादा, घोषा का सम्मिश्रण मिल जायेगा। यों भी शब्द के मध्य का अनुस्वार (यथा अंग, सुंदर) इड़ा याने चन्द्र नाड़ी को, शब्द के अन्त का (जहँ, तहँ, मैं) पिंगला याने सुर्य नाड़ी को प्रेरित करता है। गोस्वामीजी की दृष्टि में भी यह सब वर्णों की मुकुटमणि है **''एक छत्रु एक 'मुकुटमनि' सब बरननि पर जोउ''**१/२० उन्होंने भी इस छोटे से अनुस्वार का प्रयोग करके उस वांछित संज्ञा को बहुवचन बनाने का (ते को तें), वह यदि पहले से ही बहुवचन है तो उसे और सम्मान देने का (राय को रायं) या यात्रा प्रसंगों में उसे शुभसूचक सूचित करने का (आगे का आगें) और प्रायः तो वायुरोधक वर्णों को अनुनासिक करके उन्हें गति याने प्रवाहमान बनाने का कार्य किया है (यथा जबहिं, बिनहिं, कबहुँ)।

अकारान्त पदों को उकारान्त (राम को रामु) करने का मुख्य कारण तो उन्हें आदर देना या उन्हें विशेष्य सूचित करना है। किन्तु एक तथ्य यह भी है कि मुख गुह्वर के किसी भी स्थान से उच्चारित होने वाले वर्ण को उकारान्त कर देने पर वह ओष्ठव्य हो जाता है। इससे मुँह को न केवल अतिरिक्त नमी मिल जाती है अपितु **'उ'** के उच्चारण के कारण पाठ में स्वमेव ओज और गति भी आ जाती है। प्रणव की विवेचना में भी **'उ'** कार को उत्कर्ष व तेजस की मात्रा मान कर कहा है कि स्वप्नावस्था में सूक्ष्मशरीर को जो विश्राम मिलता है **'उ'** कार से वहीं उपलब्धि (स्थूल शरीर को) होती है, स्वयं में ज्ञान का उत्कर्ष और कुल में भी परमेश्वर को जानने वाले होते हैं–

''स्वप्नस्थानस्तैजस उकारो द्वितीया मात्रोत्कर्षाद् उभयत्वाद्वोत्कर्षति ह
वै ज्ञानसंतति समानश्च भवति नास्या ब्रह्म विकुले भवति य एवं वेद''।

माण्डूक्य–१०

इन्हीं अनुस्वारों व उकारों से मानस को सरस शीतल व दिव्य बनाया गया है। समाहित चित्त से पाठ करने पर लगता है कि हम दिव्य कानन मे विचरण कर रहे हैं, सरोवर में अवगाहन हो रहा है। तभी तो इतने बड़े ग्रन्थ के अखण्ड पाठ नित्यप्रति घरों–मन्दिरों में

सानन्द सम्पन्न हो पाते हैं। हैदराबाद में तो रामचरितमानस के अखण्ड तीन सौ पैंसठ दिवसीय सामूहिक पाठ हो रहे हैं। ग्रन्थ में यदि ये विशेषताएँ न हों तो गायकों के मुँह सूख जायें, जबान ऐंठने लगे।

किसी को इन अनुस्वारों और उकारों का औचित्य व्याकरण की दृष्टि से समझना हो तो श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीजी ने **'मानसांक'** में इन्हें सविस्तार समझाया है, वहाँ देख लें। शब्दों और चौपाइयों के साथ भी जगद्गुरुजी ने बहुत छेड़ छाड़ की है। सुन्दरकाण्ड जैसे सर्वाधिक प्रचलित काण्ड के मंगलाचरणों में भी अपना हस्तलाघव दिखलाया है। प्रचलित प्रतियों में **'निर्वाण शान्तिप्रदम्'** है। आपने भागवतदासजी की प्रति के हवाले से उसे **'गीर्वाण शान्तिप्रदम्'** कर दिया। **'गीर्वाण'** अर्थात् देवताओं को शान्ति प्रदान करने वाले। मानस मानवों के लिये रचा गया है, देवता इसका पाठ करने नहीं आयेंगे। और मानस में सर्वत्र **'आदि मध्य अवसाना एक समाना'** का सिद्धान्त ही देखने मिलेगा। सुन्दरकाण्ड के समापन में भी **''सादर सुनहिं ते तरहिं भव सिंधु बिना जलजान''** मोक्ष की ही शुभेच्छा दी गई है अतः निर्वाण ही शुद्ध है। इसी काण्ड के तीसरे श्लोक में, प्रचलित प्रतियों में **'हेम शैलाभ देहं'** है। आपने इसे **'स्वर्ण शैलाभ देहं'** किया है। जबकि संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित पूज्यपाद अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्दजी सरस्वतीजी (प.पू.प. शान्तनु बिहारीजी द्विवेदी) ने रामचरितमानस की अपनी टीका में गीताप्रेस के मानस को ही समीचीन मान प्रयुक्त किया है। उनका स्पष्ट कहना है कि ''इसमें संस्कृत व्याकरण के विपरीत प्रयोग किये गये हैं। जैसेकि **'ब्रह्माशंभु फणीन्द्र सेव्यमनिशं'** यह संस्कृत में होता तो **'ब्रह्म शंभु फणीन्द्रसेव्यं'** होता। ब्रह्मा नहीं होता। बीच में मात्रा नहीं होती तो? छन्द नहीं बनता''। गोस्वामीजी मानस को सद्यफलदायी बनाने का लक्ष्य लेकर चले हैं। मानस के सप्त सोपानों (काण्डों) को उन्होंने मोक्षदायिनी सप्तपुरियों (अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, कांची, अवन्तिका और द्वारावती) की अवधारणा से रचा है। अतः पांचवाँ सुन्दरकाण्ड काँचीपुरम है। काँची में भी शिवकाँची, विष्णुकाँची दो हैं और इसके प्रथम तीस दोहे शिव काँची माने गये हैं। जिसमें रुद्रावतार हनुमानजी के जाज्वल्य चरित्र को ओज प्रदान करने के लिये हृदय से प्रस्फुटित होने वाले उष्म वर्ण **'ह'** कार का अधिकतम् प्रयोग हुआ है। अशोक वाटिका उजाड़नी है, लंका जलानी है इसीलिये सौम्य रघुपति की जगह वहाँ रौद्ररूप **'लंकहि चलेउ सुमिरि नर हरी'** कहा गया। **ह** कार वर्ण उष्माण हैं हृदय से प्रस्फुटित होते हैं, हृदय के लिये पुष्टिकार हैं। इसीलिये हम **''हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे, हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे''** का जाप करते हैं अन्यथा न राम हरे हैं और न ही कृष्ण हरे हैं। **ह** कार की बहुलता के कारण ही सुंदरकाण्ड हृदय रोग की दवा माना जाता है। यों **स** कार वर्ण उष्माण वर्ग के होने के उपरान्त भी शीतलदायी प्रभाव रखते हैं। योगा के अनुसार तो सीत्कार (सी-सी) करने से छींके आने लगती हैं अतः उपरोक्त **'स्वर्ण शैलाभ देहं'** सर्वथा अनुपयोगी है।

वाल्मीकि रामायण की तर्ज पर आपने लंकाकाण्ड को युद्धकाण्ड घोषित किया है। उसमें **'भूतल परे मुकुट अति सुंदर',** रावण के मुकुटों को अति सुन्दर कहना आपको सिद्धान्त विरुद्ध लगा। अतः कोदौरामजी के हवाले से, जिनके प्रति श्रीअंजनानन्दशरणजी की टिप्पणी है कि 'संस्करणों के साथ पाठ भी बदलता गया', यह पूरी चौपाई ही बदल डाली उसे **''गिरत दशानन उठेउ सँभारी। भूतल परे मुकुट षट चारी''**। ६/३२/५ कर दिया। यों तो **'अति सुंदर'** का समाधान गोस्वामीजी ने वहीं संजो रखा है **''कछु अंगद प्रभु पास पबारै''** जो अति सुन्दर हैं वे ही तो रामजी के पास भेजे गये। आगे अंगदजी व रामजी के संवाद में इसे और सुस्पष्ट किया है-

''तासु मुकुट तुम्ह चारि चलाए, कहहु तात कवनी बिधि पाए। सुनु सर्बग्य प्रनत सुखकारी, मुकुट न होहिं भूप गुन चारी।
नीति धर्म के चरन सुहाए, अस जियँ जानि नाथ पहिं आए'' ६/३७/१० जब इतनी स्पष्ट सी बात इनके पल्ले से परे है तब इनके द्वारा इनकी पकड़ में आई तथाकथित लगभग तीन हजार अशुद्धियों का उद्धार कैसा हुआ होगा?, इसका अनुमान पाठक ही लगा लें।

वस्तुतः लाखों श्रद्धालुओं की मनोकामनाओं की पूर्ति मानस की प्रचलित प्रतियों के पाठ से ही हुई हैं। भक्ति की सुरस धारा बहाने के साथ साथ यह अति दिव्य और अलौकिक रचना है। गीताप्रेस वाला पाठ ही अगणित संतों के द्वारा सुपरीक्षित है और सभी बाल, युवा, वृद्ध, स्त्री-पुरुषों के जुबान पर भी यही लगा है। सद्यफलदायी वर्णों के आधार पर ही गोस्वामीजी ने अनुभव सिद्ध वचन कहे हैं- **''मज्जन फल पेखिअ ततकाला, काक होहि पिक बकउ मराला''**। १/२/१ इसकी दिव्यता में हम भी भावपूर्वक अवगाहन करें तो इसे रामजी का मिला यह शुभाशीर्वाद अवश्य फलीभूत होगा -

''तिन्ह कर सकल मनोरथ सिद्ध करहिं त्रिपुरारि''४/३०।

(१) बीज में विशाल वृक्ष के शाखा पत्ते फूल फल आदि सभी सम्पूर्ण रूप में रहते हैं इसी प्रकार सभी वेदों (ऋचाओं) में र कार व्यवस्थित रहता है- **''बीजे यथा स्थितो वृक्षः शाखा पल्लव संयुतः।**

तथैव सर्ववेदाश्च रकारेषु व्यवस्थिताः।। पुलह संहिता

(२) श्रीराम नाम प्रणव ओंकार का भी कारण है अर्थात् श्रीराम नाम से ही ओम उत्पन्न हुआ है अतः राम नाम जगद्गुरु है, साधक विशुद्ध मन से राम नाम का ही जप स्मरण करते हैं-

''कारण प्रणवस्यापि राम नाम जगद्गुरुम्।

तस्माद् ध्येयं सदचित्ते यतिभिः शुद्ध चेतसः।। सुश्रुत संहिता

(३)वेद रूपी अपार सागर के (र् म्) दो दिव्य अनुपम रत्नेश हैं, मननशील मुनियों के निर्मल मन रूपी मानसरोवर में विहार करने वाले दो दिव्य हंस हैं। और मोक्ष प्रदान करने वाली श्री (लक्ष्मी, सीताजी) के दोनों कानों की शोभा बढ़ाने वाले कर्णफूल दो वर्ण राम नाम हैं-

''छन्दास्सिन्धु मणिद्वयं मुनिमनः कासारहंसद्वयं।

मोक्ष श्रीश्रवणोत्पलद्वयमिदं रामेति वर्ण द्वयम्।। रहस्य नाटके

(४) महाभारत शान्ति पर्व में भगवान श्रीकृष्ण स्वयं अर्जुन से कहते हैं कि हे अर्जुन! ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, सामवेद और पुराण उपनिषद, ज्योतिष शास्त्र तथा सांख्य, योग शास्त्र, आयुर्वेद और भी धर्मग्रन्थों में महामुनियों ने हमारे अनन्त नामों का वर्णन किया है, वह सभी गौण हैं सभी नाम गुणों और कर्मों के अनुसार ही हैं सभी सद्ग्रन्थ शास्त्रों में मन्त्र-तन्त्रों में जो नाम हैं उनमें श्री राम नाम परात्पर ब्रह्म ही सबसे श्रेष्ठ है- **ऋग्वेदेऽथ यजुर्वेदे तथैवार्थवसामसु।**

पुराणे सोपनिषादितथैवं ज्योतिषेऽर्जुन।।

सांख्ये च योगशास्त्रे च आयुर्वेदे तथैव च।

बहूनि मम नामानि कीर्तितानि महर्षिभिः।।

गौणानि तत्र नामानि कर्मजानि गुणानि च।

सर्वेषु मन्त्रतन्त्रेषु रामनाम परात्परम्।।

महाभारते शान्ति पर्वणि